24. सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलन

S.S.R का विकास :

प्रथमचरण :

1820 से 1870 तक इस दौर में किसी विशेष व्यक्ति द्वारा सुधार के प्रयास किये जैसे राजाराम मोहन राय ईश्वर चन्द्र विद्यासागर **द्वितीय चरण : 1870-1900**

अब सांगठित प्रयास किये जाने लगे और जागरूकता हेतु सामाजिकता की भावना जागृति हुई महाराष्ट्र बगाल, पंजाब में विभिन्न संगठनों की स्थापना हुई।

तितीय चरण (1900-1920) : तिलक के नेतृत्व में यह स्वदेशी आन्दोलनो के बाद इन सुधारो का स्वरूप अब राष्टवादी हो गया और सांस्कृति राष्ट्रवाद को राजनैतिक चेतना से जोड़ दिया गया।

चतुर्थ चरण (1920-1950) :

गाँधी के नेतृत्व अब इन सुधारो को समर्ग विकास में जोड़ दिया। अब राष्ट्रीय आन्दोलन से कोई भी पक्ष अछूता नहीं रहा। गाँधी ने सामाज सुधारक को कभी भी आन्दोलनो से पृथक नही होने दिया।

पंचम चरण : स्वतंत्रता प्राप्त के वाद इन सुधारो को संविध ान के माध्यम से जारी रखा गया। मौलिक अधिकारो व राज्य के नीति निर्देशक तत्वों की विशेष भूमिका है।

उन्नीसवीं सदी में भारत में सामाजिक और ध र्मिक जागरण

स्वाधीनता-संग्राम के जन-जागरण में भारतीय इतिहास में अनगिनत व्यक्तियों और संस्थाओं का योगदान है। 19वीं शताब्दी में हुए आंदोलनों ने भारतीयों को सामाजिक और धार्मिक चेतना से आंदोलित किया। जिस प्रकार फ्रांस की क्रांति में वहां के दार्शनिकों और चिंतकों का महत्तवपूर्ण योगदान रहा है, उसी भांति भारत की आजादी में यहां के चिंतकों, दार्शनिकों और समाज सुधारकों का योगदान रहा। 19वीं शताब्दी को भारतीय इतिहास में सांस्कृतिक और बौद्धिक जागरण का काल कह सकते हैं।

राष्ट्रीय जागरण की प्रमुख धाराएं सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक हैं। पाश्चात्य शिक्षा और विचार के प्रभाव, अनेक सुधारकों के प्रादुर्भाव, ईसाइयत के प्रचार, भारतीय साहित्य और प्रत्र-पत्रिकाओं के योगदान ने अनेक सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों को जन्म दिया।

राजा राममोहन राय

19वीं शताब्दी के प्रारंभ में इस सांस्कृतिक जागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय (1774-1833) और उनके द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज था। डॉ. नंदलाल चटर्जी ने राजा राममोहन राय को प्रतिक्रिया और प्रगति का मध्य बिंदु कहा है। इनका जन्म 22 मई, 1774 को बंगाल के राधानगर गांव में रमाकांत के घर में हुआ। उत्तराधिकार के रूप में इन्हें 'राय' की उपाधि प्राप्त हुई। शिक्षा प्रायः पटना में हुई, जहां इन्होंने इतिहास, धर्म, दर्शन और भाषाओं का अध्ययन किया। 16 वर्ष की आयु में इनकी आस्था मूर्तिपूजा में नहीं रही और इन्होंने फारसी में 'तोहफत-उल-मुवाहेदीन' नामक पुस्तक लिखी, जिसमें मूर्तिपूजा का खंडन और एकेश्वरवाद की प्रशंसा की। पुस्तक की रचना पर क्रोधित होकर इनके पिता ने इन्हें घर से निकाल दिया। चार वर्ष तक इन्होंने भारत के विभिन्न स्थनों की यात्रा की। पिता द्वारा बुलाए जाने पर वे वापस घर लौटे और विवाह किया। 24 वर्ष की आयु में इन्होंने अंग्रेजी, हिब्रू, ग्रीक, फ्रेंच और लैटिन आदि भाषाओं का अध्ययन किया। कुछ रूढ़िवादी ब्राह्मणों की प्रेरणा से 1799 में इन्हें फिर घर से निकाल दिया गया। बारह वर्ष का कठोर समय इन्होंने अपने दो स्थानीय मित्रों के साथ बिताया। प्रारंभ में टैक्स कलेक्टर की नौकरी की। पिता की मृत्यु पर घरवालों से इनका मेल-मिलाप हुआ और ये परिवार के उत्तराधिकारी बने।।

1815 में उन्होंने 'आत्मीय सभा' की स्थापना की। 1820 में उन्होंने बाइबिल के आधार पर एक किताब भी लिखी। इनके एक ईसाई मित्र ने इन्हें ईसाई बनाने का भी प्रयत्न किया, पर सफलता न मिली। 20 अगस्त, 1928 को राजा राममोहन राय ने 'ब्रह्म समाज' की स्थान की। उसका उद्देश्य हिन्दू समाज की बुराइयां दूर करना, ईसाइयत के प्रभाव को रोकना और सब धर्मों में आपसी एकता स्थापित करना था। ब्रह्म समाज का स्वरूप भारतीय था और इसे 'अद्वैतवादी हिन्दुओं की संस्था' कहा जा सकता है। इसका उद्देश्य हिन्दू धर्म को रूढ़ियों से मुक्त कर नया रूप देना था। यह मूर्तिपूजा के बहिष्कार, अवतारवाद के विरोध, ईश्वर की एकता और जीवात्मा की अमरता में विश्वास करता था। एक रूसी विद्वान के अनुसार, 'ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने ब्रह्म समाज की गतिविधि यों में हर तरह से रुकावटें डालीं और बुद्धिवादियों को गुमराह करने की कोशिश की।'

राममोहन राय बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उन्होंने सामाजिक क्षेत्र में भी अपनी योग्यता को प्रदर्शित किया। तत्कालीन समाज

में प्रचलित सती-प्रथा का उन्होंने डट कर विरोध किया। वास्तव में सती-प्रथा के विरोध की प्रेरणा उन्हें उस समय हुई, जब 1811 में उनके भाई जगमोहन की मृत्यु पर उनकी भाभी को जबरदस्ती सती करा दिया गया। इस प्रथा को बंद करने के लिए उन्होंने समाजव्यापी आंदोलन चलाया और ब्रिटिश गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बैंटिक को कानून बनाने में सहयोग दिया। इसके अतिरिक्त अन्य सामाजिक कुरीतियों, जैसे- बहुविवाह, बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, छुआछूत और जाति-प्रथा की जटिलता को रोकने के उन्होंने भरसक प्रयत्न किया और विधवा-विवाह, अंतर्जातीय विवाह, स्त्री-शिक्षा और महिलाओं को संपत्ति में उत्तराधिकार का हिस्सा दिलाने के लिए प्रत्यन किया। बाद में यही ब्रह्म समाज का सामाजिक कार्यक्रम बन गया।

राममोहन राय ने आह्वान किया कि भारतीय तब तक उन्नति नहीं कर सकते, जब तक वे पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान को आत्सात न कर लें। वास्तव में वह न तो अतीत की प्रत्येक बात को ठीक समझते थे, और न ही पश्चिम को जैसा-का-तैसा अपनाने को कहते थे। वह तर्क और बुद्धि के आधार पर बात मानने को कहते थे। राजा राममोहन राय ने अंग्रेजी भाषा के अध्ययन पर बल दिया। कलकत्ता में हिन्दू कॉलेज की स्थापना की।

समाचार-पत्रों की आजादी के प्रति भी उन्होंने जन-जागरण किया। स्वयं कई पत्र निकाले। राजनीतिक समानता और कानूनी सुधारों के प्रति चेतना जगाई। उन्होंने सेना में भारतीयों को ऊंचे पद देने और उसके भारतीयकरण की मांग की। बंगाल में जमींदारों से पीड़ित कृषकों की हालत सुधारने के लिए जनमत को जगाया। भूमिकर हमेशा के लिए निर्धारित करने को कहा। भारतीय वस्तुओं पर निर्यात-कर हटाने को कहा। उन्होंने धन का निष्कासन (Economic Drain) दूर करने के लिए यूरोपीयों को स्थाई रूप से भारत में बसने को कहा।

राममोहन राय अंतर्राष्ट्रीयता के भी पुजारी थे। उन्होंने विभिन्न देशों की संसदों में से एक-एक सदस्य लेकर अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस बनाने का सुझाव दिया। पासपोर्ट प्रणाली को हटाने का सुझाव दिया। वह विश्व में स्वतंत्रता, समानता और प्रजातंत्र के समर्थक थे।

विद्वान लेखक सत्येन्द्रनाथ मजूमदार के अनुसार वे प्रथम हिन्दू थे जो विलायत गए। उन्होंने ब्रह्म समाज के माध्यम से अपने धर्म, परंपरा, विश्वास का त्याग न करके यूरोप की सभ्यता से सामंजस्य स्थापित करने को कहा। परिणामस्वरूप जहां तमाम यूरोप में ईसाइयत की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही थी, वहां भारत में शासकों का धर्म होने पर भी उसकी प्रगति नाममात्र की थी। वास्तव में राममोहन राय ने अपने विचारों को उपनिषदों एवं वेदों पर आधारित कर हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता को स्थापित किया और अनेक कुरीतियों पर कटु प्रहार कर समाज में तर्क व स्वतंत्रता की भावना एवं बौद्धिक जागरण लाए। वह उस महान सेतु के समान थे, जिस पर चढ़कर भारतवर्ष अपने अथाह अतीत से अज्ञात भविष्य में प्रवेश कर सकता था।

देवेन्द्रनाथ टैगोर और ब्रह्म समाज

राममोहन राय के पश्चात ब्रह्म समाज का नेतृत्व रवीन्द्रनाथ टैगोर के पितामह महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर (1817-1905) ने लिया। 1839 में उन्होंने 'तत्त्वबोधिनी सभा' बनाई, जो 1842 में ब्रह्म समाज में मिला दी गई। उनके प्रभाव से ईश्वर चंद्र विद्ययासागर और अक्षय कुमार दत्त जैसे विचारक भी ब्रह्म समाज के सदस्य बने। उन्होंने बंगला भाषा में 'तत्त्वबोधिनी' नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित की। उन्होंने और उनके अनुयायी अक्षय कुमार दत्त ने ब्रह्म समाज से ईसाइयत के प्रभाव को दूर करने की कोशिश की। दत्त ने कहा कि 'मुझे डर है कि कहीं वे 'हिन्दू' शब्द ही न भूल जाएं और अपने को विदेशी नाम से पुकारें।' 1846 में जब देवेंद्रनाथ के पिता का देहांत हुआ और ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते उन्हें मृत्यु संस्कार करने को कहा, तब उन्होंने इसे मूर्तिपूजा अनुष्ठान कहकर करने से मना कर दिया। इससे उनकी लोक निंदा हुई 1905 में उनका देहांत हो गया।

इन्हीं दिनों केशव चंद्र सेन (1838-1884), जिनकी आयु केवल 19 वर्ष की थी, ब्रह्म समाज के संपर्क में आए। केश्व चंद्र सेन 'जॉन दी बैप्टिस्ट', ईसा मसीह और सेंट पॉल के जीवन से बहुत प्रभावित थे। अत: शीघ्र ही उनका देवेन्द्रनाथ से टकराव हो गया। 1866 में ब्रह्म समाज क्रमश: 'ब्रह्म समाज और 'आदि ब्रह्म समाज' में बंट गया। 1870 में केश्व चंद्र सेन इंग्लैंड गए। उन्होंने वहां 6 महीने के प्रवास में लगभग 70 व्याख्यान दिया। स्थान-स्थान पर ईसाई मिशनरियों ने उनका स्वागत किया। कइयों को लगा कि वे ईसाई बनेंगे। केशव चंद्र सेन ने अनेक सामाजिक सुधारों-अंतर्जातीय विवाह, स्त्री-शिक्षा और विधवा-विवाह पर बल दिया। उन्होंने इसके साथ ही बाल-विवाह, बहुविवाह, जाति-प्रथा की कटु आलोचना की। अल्पायु से ही उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह कूच-बिहार के अल्पायु राजकुमार से कर दिया। वह यद्यपि स्वयं बाल-विवाह के विरोधी थे, पर यह कहकर कि 'ईश्वर का आदेश है कि यह विवाह हो जाना चाहिए, 'विवाह की स्वीकृति दे दी। इस घटना से उनकी प्रतिष्ठा को धक्का लगा। अत: इससे ब्रह्म समाज एक बार पुन: दो भागों में बंटा। केशव चंद्र सेन का समाज 'आदि ब्रह्म समाज' व शेष 'साधारण ब्रह्म समाज' कहलाया। 1884 में उनकी मृत्यु पर मैक्समूलर ने कहा था कि 'भारत ने अपना श्रेष्ठतम पुत्र खो दिया है।'

ब्रह्म समाज ने राजा राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ टैगोर, केशव चंद्र सेन जैसे समाज सुधारकों के नेतृत्व

में अनेक धार्मिक और सामाजिक सुधारों को दिशा दी। जहां उन्होंने पुरानी रूढ़ियों व अंधविश्वासों को छोड़ने को कहा, मूर्तिपूजा, अवतारवाद को त्यागने को कहा, वहीं धर्म ग्रंथों के मूल तत्त्व, मानवीय दृष्टिकोण, तर्क और बुद्धि पर आधारित चिंतन को प्रोत्साहित किया। समाज सुधार में भी उन्होंने अनेक कुरीतियों को त्यागने और महिलाओं की दशा में सुधार करने पर बल दिया तथा जातिवाद और छुआछुत का विरोध किया।

अत: यह कहना गलत न होगा कि ब्रह्म समाज से भारतीय जनजीवन में जागृति आई। ईसाइयत की आंधी को रोका गया। भारतीयों को पाश्चात्य दर्शन और दिशा के अध्ययन के लिए प्रेरित किया गया। इससे प्रेरणा लेकर स्थान-स्थान पर नई-नई संस्थाओं का जन्म हुआ। हेनरी डिरोजियो (1809-1839), ईश्वर चंद्र विद्यासागर और महादेव गोविंद रानाडे ने प्रयत्न किए, परन्तु यह कहना पड़ेगा कि ब्रह्म समाज इतना प्रभावी न हो सका। आंतरिक झगड़ों से उसके बार-बार टुकड़े होते गए। यह अधिकतर पढ़े-लिखे वर्ग को ही प्रभावित कर सका।

ईश्वर चंद्र विद्यासागर

19वीं शताब्दी के समाज सुधारकों और शिक्षाविदों में ईश्वर चंद्र विद्यासागर का स्थान प्रमुख व्यक्तियों में है। राजा राममोहन राय की भांति उन्होंने समाज सुधार और शिक्षा के क्षेत्र में अदम्य साहस और कठोर परिश्रम का परिचय किया। इनका जन्म 1820 में एक अत्यंत गरीब परिवार में हुआ था। परिश्रम और कठोर साधना से वे संस्कृत कॉलेज में प्रधानाचार्य बन गए। वे भारत के प्राचीन साहित्य और पाश्चात्य ज्ञान के महान पंडित थे।

ईश्वर चंद्र विद्यासागर का सामाजिक क्षेत्र में अतुल योगदान था। उन्होंने महिलाओं की सामाजिक दशा सुधारने के लिए बड़े प्रयत्न किए। उन्होंने भारत की हिन्दू विधवाओं की दीन-हीन दशा देखकर विधवा पुनर्विवाह के लिए आंदोलन चलाया। 1855 में इसके लिए एक पत्रक भी प्रकाशित किया। उन्होंने समूचे देश में इसके लिए आंदोलन चलाया और 1856 में इसको कानूनी मान्यता दिलवाई। इस कानून के अंतर्गत पहला विधवा-विवाह उनकी ही देखरेख में हुआ। उन्होंने 1856-1860 के बीच लगभग 25 विधवाओं के पुनर्विवाह कराए। इसके अलावा उन्होंने बाल-विवाह और बहुविवाह का विरोध किया।

ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने शिक्षा और भाषा की उन्नति के लिए भरसक प्रयास किए। उन्होंने संस्कृत भाषा के प्रचार और प्रसार के लिए महत्त्वपूर्ण प्रयास किए। उन्होंने संस्कृत कॉलेज में गैर-ब्राह्मणों को भी प्रवेश दिया। उन्होंने बंगला भाषा में स्वयं एक वर्णमाला 'वर्ण परिचय' तैयार की ओर बंगला साहित्य में गद्य शैली के विकास व शिक्षा के विस्तार के लिए कॉलेज की स्थापना की। उनके द्वारा अनेक स्कूल खुलवाए गए। उन्होंने महिलाओं में उच्च शिक्षा को बढ़ावा दिया। इसके लिए 1849 में कलकत्ता में बैथुन स्कूल की स्थापना की। इस स्कूल का मुख्य उद्देश्य महिला-शिक्षा को प्रोत्साहन देना था। शीघ्र ही उनका बैथुन स्कूल महिला शिक्षा का केंद्र बन गया, परन्तु इसके लिए ईश्वर चंद्र विद्यासागर को कठोर संघर्ष और सामाजिक बहिष्कार भी सहना पड़ा था। सरकारी निरीक्षक रहते हुए उन्होंने लड़कियों के लिए 35 विद्यालय स्थापित किए थे।

ईश्वर चंद्र विद्यासागर एक महान शिक्षाविद्, सुधारक के साथ अत्यंत दयावान ओर सहृदयी व्यक्ति थे। उनके व्यक्तिगत जीवन की अनेक घटनाओं से अनेक लोगों ने प्रेरणा ली। वे दीनहीनों की आर्थिक मदद, विद्यार्थियों की अध्ययन में सहायता ओर महिलाओं की प्रगति में सदैव तत्पर रहते थे। वे एक महान मानवतावादी व्यक्ति थे।

बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय

प्रसिद्ध राष्ट्रगीत 'वंदेमातरम्' के रचयिता, बंगाल के महान उपन्यासकार बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय (1838-1894) ने भारतीय जनजीवन में, विशेषकर बंगाली समाज में एक नई सोच और चेतना जागृत करने का कार्य किया। इनका जन्म 26 जून, 1838 को चौबीस परगना के कांठालपाड़ा में हुआ था। इनके पिता यादव चंद्र चट्टोपाध्यास धार्मिक विचारों के थे और घर में साधु-संतों का आना-जाना रहता था। इनकी शिक्षा कांठालपाड़ा, मेदिनीपुर, हुगली और कलकत्ता में हुई। बंकिम बचपन में पढ़ाई-लिखाई में निपुण थे। मैकॉले द्वारा अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा नीति के अंतर्गत 1857 में स्थापित कलकत्ता विश्वविद्यालय के वे पहले स्नातक थे। अंग्रेजी साहित्य के साथ-साथ उन्होंने वैदिक और प्राचीन संस्कृत साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन किया।

बंकिम चंद्र बी.ए. पास करते ही डिप्टी मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त हो गए और कुछ काल बाद डिप्टी कलेक्टर के पद पर पहुंच गए। वे 1891 तक सरकारी नौकरी करते रहे। जैसोर, तेगुआ (कांथी), खुलवा और जहाजपुर स्थानों पर नौकरी करते हुए उन्हें बंग-जीवन के दर्शन हुए, इसके अलावा अंग्रेजी शासन की मनोवृत्ति पता चली तथा अनेक कटु अनुभव हुए।

उन्होंने बंगला भाषा में अपनी रचनाओं से भारतीयों में नवजागरण किया। 1872 में 'बंगदर्शन' नाम से एक मासिक-पत्रिका बहरामपुर से निकाली। बंकिम चंद्र की सभी उपन्यास, लेख इसी पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए, जो बाद में पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुए।

उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा बंगाल में सामाजिक चेतना जागृत की। उन्होंने अपने विभिन्न पत्रों के माध्यम से बंगाल में प्रचलित विधवा-विवाह, बाल विवाह, बहुविवाह और जातिच्युत होने के भय का वर्णन किया। उन्होंने जातीय नियमों की जटिलता

का विरोध किया। उन्होंने नारी व्यथाओं, नारी यातनाओं और नारी संघर्ष का सजीव चित्रण कर समाज में चेतना जागृत की।

उन्होंने सांस्कृतिक और आधात्मिक जागरण में यथेष्ठ योगदान दिया। वे राजनीतिक परिवर्तन से पूर्ण सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जागरण को महत्त्व देते थे। हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता बताते हुए उन्होंने ज्ञान और कर्म के महत्त्व पर प्रकाश डाला। उन्होंने ईश्वर की अनन्य भक्ति, अनासक्त भाव से कर्म, इंद्रिय संयम, अहंकार रहित ज्ञान और दान का स्वरूप जैसे अनेक विषयों की चर्चा की है। उन्होंने देश की उन्नति के लिए अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार उपयोगी बताया, परंतु इसका उपयोग बड़ी सावधानीपूर्वक करने को कहा। वे ज्ञान और तकनीक में पाश्चात्य सहायता प्राप्त करने के समर्थक थे।, परंतु उसके अंधानुकरण के घोर विरोधी थे। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से देशभक्ति और राष्ट्रप्रेम की भावना जगाई। 'आनंदमठ' उनका विश्वविख्यात उपन्यास माना जाता है। इसमें उद्धृत 'वंदेमातरम्' आजादी का नाद, मूलमंत्र और प्रेरणा-स्त्रोत बन गया।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय ने अपनी विविध रचनाओं के माध्यम से सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना जागृत की और भारतीय जनमानस में राष्ट्रीयता का भाव पैदा किया।

रामकृष्ण और विवेकानंद

रामकृष्ण परमहंस (1834-1886) बंगाल के एक अत्यंत गरीब, अनपढ़ संत पुरुष थे। बचपन से ही ईश्वर भक्ति की इनमें अद्‌भुत लगन थी। अनेक बार भक्ति करते-करते वे अत्यंत विह्वल होकर संज्ञाहीन हो जाते थे। रोमारोलां ने इसकी भाव विह्वलता का वर्णन करते हुए लिखा कि 'यदि वह यूरोप में होते, तो उनकी बड़ी दुर्दशा होती। जरूर ही मानसिक चिकित्सा का रोगी मानकर पागलखाने में भेज लिया जाता।' सात वर्ष की आयु में ही इनके पिता का देहांत हो गया था। कुछ काल बाद कलकत्ता में गंगा के पूर्वी तट पर दक्षिणेश्वर में काली महादेवी का एक मंदिर बनवाया गया ओर तभी से वे काली के अनन्य भक्त हो गए। रामकृष्ण की भेंट प्रसिद्ध भैरवी और तोतापुरी जैसे संतों से हुई। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने इस्लाम और ईसाई धर्म के द्वारा भी ईश्वर का साक्षात्कार किया। निष्कर्ष रूप से उनका विचार था कि संसार के सीभी धर्म सच्चे रूप से ईश्वर तक पहुंचने के भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। रामकृष्ण परमहंस ने सभी धर्मो की एकता, ईश्वर की अनन्य भक्ति, मानव-सेवा और आध्यात्मिक जीवन को महत्त्व दिया।

रामकृष्ण परमहंस के परम शिष्य स्वामी विवेकानंद (1863-1902) हुए। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है, 'यदि कोई भारत को समझना चाहता है, तो उसे विवेकानंद को पढ़ना चाहिए।' रामधारी सिंह दिनकर का कथन है, 'रामकृष्ण, विवेकानंद एक ही जीवन के दो अंश, एक ही सत्य के दो पक्ष हैं। रामकृष्ण अनुभूति थे, विवेकानंद उनकी व्याख्या बनकर आए थे।' रामकृष्ण, हिन्दूधर्म की यदि गंगा थे, तो विवेकानंद उस गंगा के भगीरथ थे। इन दोनों का मिलन रहस्यवाद और बुद्धिवाद का मिलन कहा गया है।

विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी, 1836 को कलकत्ता में हुआ। उन्होंने भारतीय दर्शन के साथ स्टुअर्ट मिल, हरबर्ट स्पेंसर, शैली, हेगेल और वर्ड्‌सवर्थ की रचनाओं को भी ध्यान से पढ़ा था। वह फ्रांस की क्रांति, नेपोलियन के रोमांचकारी जीवन और ईसा मसीह के जीवन से अत्यधिक प्रभावित थे। तत्कालीन धार्मिक और बौद्धिक नेताओं से उनकी भेंट हुई। नवंबर 1880 में रामकृष्ण से उनकी प्रथम भेंट हुई और शीघ्र ही विवेकानंद उनके भक्त बन गए। रामकृष्ण ही एकमात्र व्यक्ति थे, जिन्होंने विवेकानंद के इस प्रश्न, 'क्या आपने ईश्वर को देखा है?' का उत्तर 'हां' में दिया था। शायद रामकृष्ण परमहंस से विवेकानंद की भेंट न हुई होती, तो वे दुनिया के सबसे बड़े नास्तिकों में होते।

विवेकानंद 1891 में बिना किसी को साथ लिए नामहीन, अनजान भिखारी की भांति, यात्रा पर निकल पडे। उन्होंने भारत की यात्रा पर यहां की गरीबी, भुखमरी और दयनीय दशा का प्रत्यक्ष अनुभव और दर्शन किया। साथ ही उन्होंने भारत की विशालता और विविधता का भी ध्यान आया। अतः दो वर्ष तक भारत के विभिन्न क्षेत्रों की यात्रा करते हुए उन्हें भारत की समस्याओं का ज्ञान हुआ। 1893 में शिकागों में हो रहे सर्वधर्म सम्मेलन में उन्होंने भाग लिया। वहां 'भाइयों और बहनों' के आत्मीयता से पूर्ण शब्दों का उच्चारण कर उन्होंने संसार की जनता को मोह लिया।

1897 में उन्होंने अपने गुरू के नाम पर रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। उन्होंने हिन्दू संस्कृति का उद्‌घोष किया और यहां के धर्म और संस्कृति की विशेषता बताई। उन्होंने समाज में भारत के गौरवपूर्ण अतीत के प्रति वर्ग की भावना जाग्रत की। साथ ही अंधविश्वासी और कट्टरपंथी न बनने को कहा। विवेकानंद ने अपने जीवन दर्शन में पूर्व एवं पश्चिम के समन्वय की बात कही। साथ ही ईसाइयत के कुप्रचार का भंडाफोड़ किया। विवेकानंद ने वेदांत का प्रचार और सर्वधर्म की एकता के विश्वास व्यक्त किया।

स्वामी विवेकानंद ने सामाजिक दृष्टि से भी समाज सेवा और नारी सम्मान को महत्त्व दिया। छुआछूत का कटु विरोध किया। उन्होंने एक बार कहा था, "हम में से अधिकतर अभी न वेदांती हैं न पुराणपंथी और नही तांत्रिक। असल में हम हैं 'छुआछूतपंथी'। रसोई घर हमारा मंदिर है, पकाने के बर्तन हमारा

उपास्य देवता है और 'मत छुओ, मैं पवित्र हूं' हमारा मंत्र है। अगर यह एक शताब्दी तक और चलता रहा तो हम सब पागलखाने में होंगे।"

स्वामी विवेकानंद राष्ट्रीयता के पोषक थे। उन्होंने भारतवासियों में आत्मविश्वास की भावना पैदा की, दुर्बलता को पाप बताया और शक्ति की पूजा का आह्वान किया। कुछ वर्षों के लिए सभी देवी-देवताओं की पूजा छोड़कर भारत मां की पूजा करने को प्रेरित किया। देश के नवयुवकों से कहा, 'उठो, जागो और तब तक न रुको जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो।' उन्होंने पश्चिम के अंधानुकरण की कड़ी आलोचना की। उन्होंने एक स्थान पर कहा-

'वीरो, साहस का अवलंबन करो, गर्व से कहो कि मैं भारतवासी हूं। प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, तुम चिल्लाकर कहो कि अज्ञानी भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, दलित भारतवासी मेरा भाई है.... भारतीय समाज मेरे बचपन का झूला, जवानी की फुलवाड़ी और वृद्धावस्था की काशी है।'

इतना ही नहीं स्वामी विवेकानंद की आध्यात्मिक पुत्री सिस्टर निवेदिता ने बंगाल के अनेक क्रांतिकारियों और समाज सेवियों को प्रत्यक्ष रूप से सहयोग भी दिया।

स्वामी विवेकानंद ने वेदांत के आधार पर धर्म और अध्यात्म को सर्वोच्च स्थान दिया। वे समाज सुधार एवं राजनीतिक पुनरुत्थान से पूर्व धार्मिक अभ्युत्थान को आवश्यक मानते थे। उनका निश्चित मत था कि भारत की आत्मा धर्म और अध्यात्म में निवास करती है। उन्होंने कहा था-

'यदि कोई हिन्दू आध्यात्मिक नहीं है, तो मैं उसे हिन्दू नहीं कहता। भारत की तितर-बितर फैली हुई आध्यात्मिक शक्तियों को एकत्रित करके उसकी राष्ट्रीय एकता स्थापना की जानी चाहिए।'

वे अध्यात्म को राष्ट्र का मेरुदंड मानते थे। अपना विचार है कि हम अपने प्राचीन पूर्वजों से चली आई, इस अमूल्य विरासत, अध्यात्म को पकड़कर कदापि ढ़ीला न होने दें। वे धर्म को तर्क और अनुभूति के आधार पर आंकने को कहते हैं।

'किसी बात पर यह सोचकर विश्वास न करो कि तुमने उसको किसी पुस्तक में पढ़ा है, किसी बात पर इसलिए विश्वास मत करो कि किसी ने ऐसा कहा है, अपितु तुम स्वयं सत्य की खोज करो।'

वे धार्मिक चेतना और सामाजिक प्रगति को एक दूसरे से जुड़ा हुआ मानते हैं, इसलिए उन्होंने धार्मिक अंधविश्वासों, रूढ़िवादिता, खोखले रीति-रिवाजों को दूर करने पर बल दिया। उन्होंने जाति-प्रथा की जटिलता, छुआछूत और अन्य कुरीतियों को समाप्त करने और नारी सम्मान, नारी शिक्षा के उत्थान के लिए प्रेरणा दी।

सामाजिक सुधारों में वह लोगों की अज्ञानता, अनाथों की सहायता और गरीबों की कठिनाइयों को दूर करने को प्राथमिकता देते थे। उनका विचार था कि गिरे हुए की सेवा ही सबसे बड़ा धर्म है। वे शिक्षित भारतीयों को संबोधित करते हुए कहते थे-

'जब तक भारत में करोड़ों लोग भूख और अज्ञान से ग्रसित होकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं, तब तक मैं प्रत्येक उस व्यक्ति को देशद्रोही समझूंगा, जो उनके खर्च से शिक्षित होने के बाद उनके प्रति तनिक भी ध्यान नहीं देता।'

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि स्वामी विवेकानंद के विचारों का देश-विदेश में बड़ा प्रभाव हुआ। सुभाष चंद्र बोस ने लिखा है कि 'उनमें बुद्ध का हृदय और शंकराचार्य की बुद्धि थी तथा वह आधुनिक भारत के निर्माता थे।' गांधी जी ने कहा है कि 'स्वामी विवेकानंद के लिए किसी परिचय की जरूरत नहीं, उनका नाम ही प्रेरणा है।' रवीन्द्रनाथ टैगोर ने उन्हें 'सृजन की प्रतिभा' कहा। अमेरिका में विवेकानंद अपने युग में 'तूफानी हिन्दू' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अत: निश्चित ही भारत के नवजागरण में विवेकानंद का बहुत बड़ा योगदान है।

स्वामी दयानंद और आर्य समाज

राजा राममोहन राय ने जहां ईसाइयत के विरुद्ध पहले मोर्चे पर लड़ाई लड़ी, जो रक्षा के बंधन का मोर्चा था, वहां स्वामी दयानंद (1824-1883) ने आक्रमण प्रारंभ कर दिया, क्योंकि वास्तविक रक्षा का उपाय तो आक्रमण की नीति ही है। स्वामी दयानंद का जन्म गुजरात के टंकारा नामक स्थान पर एक ब्राह्मण परिवार में 1824 में हुआ। इनके बचपन का नाम मूलशंकर था। एक बार शिवरात्रि के पर्व पर उन्होंने एक चूहे को शिवलिंग से खाद्य सामग्री ले जाते देखा। उन्हें लगा कि जो भगवान अपनी रक्षा नहीं कर सके, वह अन्य की रक्षा कैसे करेंगे। बस यही घटना उनके जीवन की परिवर्तनकारी घटना साबित हुई। स्वामी पूर्णानंद से उन्होंने संन्यास की दीक्षा ली और अब वे दशनंद कहलाने लगे। उन्होंने मथुरा जाकर स्वामी विरजानंद से ज्ञान प्राप्त किया, जिसमें उन्होंने संसार को वेदों का ज्ञान देने को कहा। 1872 में कलकत्ता में इनकी भेंट ब्रह्म समाजी नेता केशव चंद्र सेन से भी हुई, जिसमें केशव चंद्र ने उन्हें संस्कृत बोलने की बजाए हिन्दी में व्याख्यान देने का सुझाव दिया। 10 अप्रैल, 1875 को उन्होंने 'आर्य समाज' की स्थापना की और उसमें 28 नियमों का समावेश किया।

बाद में दिल्ली, पंजाब का दौरा करते हुए लाहौर में आर्य समाज की स्थापना की गई और केवल दस नियम बना दिये गए। जोधपुर में कुछ विरोधियों ने इनको कांच पीसकर पिला दिया, जिसके कारण 30 अक्टूबर, 1883 को दीवाली के दिन इनका

देहावसान हुआ।

स्वामी दयानंद ने धार्मिक अंधविश्वास, राजनीति, शिक्षा, समाज सुधार-सभी ओर आक्रामक रुख अपनाया। 'सत्यार्थ प्रकाश' के माध्यम से जहां वेदों की महत्ता को संसार के सम्मुख रेखा, वहां वाममार्ग, देवी भागवत, मूर्तिपूजा तथा बौद्ध, जैन, ईसाई और मुस्लिम-विभिन्न संप्रदायों एवं मतों के अंधविश्वासों और रूढ़ियों का खंडन किया। अपने जीवन का उद्देश्य 1867 में हरिद्वार कुंभ के अवसर पर पाखंड-खंडनी पताका फहराकर स्पष्ट किया। उन्होंने अंधविश्वास और अज्ञान को हटाने के लिए शिक्षा पर विशेष बल दिया। उन्होंने निराकार परमेश्वर की सत्ता को महत्त्व दिया और मूर्तिपूजा, अवतारवाद और बाहरी दिखावे का डटकर विरोध किया। ईसाई मिशनरियों के क्रियाकलापों की कटु आलोचना की और पारंपरिक भारतीय सभयता और संस्कृति के प्रति स्वाभिमान पैदा किया।

शिक्षा के क्षेत्र में स्वामी दयानंद व उनके अनुयायियों का विशेष योगदान है। अनेक स्थान-स्थान पर डी.ए.वी. स्कूलों, कॉलेजों, गुरुकुलों एवं कन्या पाठशालाओं की स्थापना हुई। एक ओर पाश्चात्य शिक्षा शैली पर लाला हंसराज ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया, वहीं भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति पर आधारित गुरुकुलों की स्थापना स्वामी श्रद्धानंद ने की।

स्वामी दयानंद ने आश्रम व्यवस्था को महत्त्व दिया और वर्ण व्यवस्था को गुण व कर्म के अनुसार ही मानने को कहा। छुआछूत-प्रथा का विरोध किया और नारी के प्रति सम्मान को बढ़ावा दिया। बाल-विवाह, कन्या-वध, पर्दे की प्रथा जैसी कुरीतियों का विरोध किया।

राष्ट्रीय जागरण में स्वामी दयानंद ने स्वदेशी, स्वधर्म, स्वभाषा और स्वराष्ट्र पर बल दिया। संभवत: वे स्वराज्य के पहले संदेशवाहक थे। स्वामी दयानंद ने बताया कि 'कोई कितना ही कहे परंतु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि व उत्तम होता है।' एनी बेसेंट ने कहा था कि 'दयानंद पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने भारतीयता का नारा लगाया।' दयानंद ने विदेशी शासन की कटु आलोचना की और इसका कारण आपस की फूट, अशिक्षा, बाल-विवाह, वेदों का कुप्रचार और देशभक्ति का अभाव बताया। स्वामी दयानंद ने भारत की दासता को अपना मूल रोग बताया। अंग्रेज सरकार उनकी आक्रामक वाणी से इतनी आतंकित हुई कि लॉर्ड नार्थब्रुक (1872-1876) ने स्वामी दयानंद के पीछे गुप्तचर छोड़ दिया और उसकी सूचना ब्रिटिश सरकार को भी दी गई। स्वामी दयानंद ने भारतीय रियासतों के पतन का मूल कारण उनका भोग-विलासी जीवन बताया। वस्तुत: स्वामी दयानंद की प्रेरणा के देशभक्ति और राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत नवयुवकों की एक श्रृंखला खड़ी हुई। लाला हंसराज, पं. लेखराज और स्वामी श्रद्धानंद जैसे व्यक्ति इसी श्रेणी में आते हैं। लाला लाजपतराय ने लिखा कि 'स्वामी जी ने देशभक्ति और देश सेवा का बीज हमारे हृदय में बोया।' बाल गंगाधर तिलक, अरविंद घोष, सुभाष चंद्र बोस, लाजपतराय और श्यामजी कृष्ण वर्मा और अनेक नेता उनके विचारों से प्रभावित हुए।

इसमें संदेह नहीं कि स्वामी दयानंद ने सोए भारत के नवयुवकों को झकझोर कर खड़ा किया। स्वदेश प्रेम और स्वाभिमान की भावना जगाई, पर इसके साथ यह कहना भी गलत न होगा कि उन्होंने एक नूतन अंधविश्वास को भी जन्म दिया कि वेदों में त्रिकाल ज्ञान सन्निहित है। आर्यावर्त की सीमाएं विंध्याचल पर्वत पर आकर समाप्त हो गई और यह दक्षिण भारत में नहीं फैला। साथ ही इनके अनुयाइयों ने सिद्धांतों के मंडन के स्थान पर दूसरे मतों के खंडन करने की प्रवृत्ति ज्यादा विकसित की।

ज्योतिबा फुले

19वीं शताब्दी के उपरोक्त सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलनों ने जहां मुख्यत: उत्तर भारत में हलचल मचाई, वहीं पश्चिम और दक्षिण भारत में कथित निम्न जातियों में भी चेतना जगाई। जाति-प्रथा की जटिलता का विरोध और समानता के सिद्धांत ने इन आंदोलनों को बढ़ावा दिया। अंग्रेजों द्वारा प्रदत्त कानून में समानता, रेल, तार, डाक व्यवस्था, शिक्षा, साहित्य और समाचार-पत्र-सभी ने इनमें चेतना जगाई।

इन निम्न कहलाने वाली जातियों के संघर्ष में ज्योतिराव गोविंदराव फुले (1827-1890) के नाम महत्त्वपूर्ण है। इनका जन्म माली परिवार में हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि इनके पूर्वज पेशवाओं को पुष्प और फूल-मालाएं भेजते थे। अत: इन्हें फुले कहा जाता था।

ज्योतिराव बचपन से ही अत्यंत शीलवान थे। स्कॉटिश मिशन स्कूल में पढ़ते हुए उन्हें मानव अधिकारों और कर्तव्यों की जानकारी मिली। वे शिवाजी और जॉर्ज वाशिंगटन के जीवन से प्रेरित हुए। उन्होंने टॉमस पेन की 'राइट्स ऑफ मैन' पुस्तक पढ़ी थी और वासुदेव बलवंत फड़के से निर्भयता का पाठ। उनको अध्ययन से लगा कि सभी धर्मों में कुछ समानताएं हैं।

उन्होंने पिछड़ी जातियों में जागृति लाने के लिए प्रयत्न किए। उनको सामाजिक न्याय और आत्मसम्मान दिलाने के लिए कई कार्य किए। उन्होंने नारी शिक्षा के लिए प्रयत्न किए। 1851 में पूना में एक कन्या विद्यालय खोला। उन्होंने विधवा पुनर्विवाह के लिए प्रयास किए। उन्होंने 1873 में 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की। इसका उद्देश्य समाज में पिछड़े और उपेक्षित वर्ग को सामाजिक न्याय दिलाना था। उन्होंने कई विद्यालय और अनाथालय भी खोले। ज्योतिराव ने कई ग्रंथ भी प्रकाशित किए, जैसे- 'धर्म तृतीय रत्न', 'इशारा' और 'शिवाजी की जीवनी'। 1872 में

उन्होंने एक पुस्तक 'गुलामगीरी' भी लिखी। इन ग्रंथों के द्वारा इन्होंने ब्राह्मणों के प्रभुत्व को चुनौती दी।

इन्होंने हटर कमीशन के सम्मुख अपना आवेदन किया, जिसमें बतलाया गया कि ईसाई मिशनरियों का उद्देश्य न ही देशभक्ति पूर्ण है और न केवल शिक्षा तक सीमित है।

शीघ्र ही ज्योतिराव अपने समाज सुधार कार्यों से प्रसिद्ध हो गए थे। उन्हों को 1876 में पूना नगर पालिका का सदस्य भी बनाया गया। 1888 में इन्हें लोग 'महात्मा' कहने लगे। जन-समाज में ये ज्योतिबा फुले के नाम से विख्यात हुए। 28 नवंबर, 1890 को इनका देहांत हो गया।

सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों का प्रभाव

उपरोक्त प्रमुख आंदोलनों के अतिरिक्त विभिन्न प्रांतों में ऐसे अनेक आंदोलन, संप्रदाय और व्यक्ति हुए जिन्होंने समाज में चेतना जगाई-मुसलमानों में अलीगढ़ और देवबंद आंदोलन, सिक्खों में सिंह सभा और बाद में गुरुद्वारा सुधार आंदोलन हुए और दक्षिण में थियोसोफिकल सोसायटी बनाई गयी। इसी प्रकार हिन्दू समाज में प्रार्थना समाज, राधास्वामी मत, सनातन धर्म सभा, देव समाज, पारसियो में रहनुमाई भजदयासन समाज (1851) आदि थे। इसी भांति गोपाल हरि देशमुख, के. टी. तेलंग, गोपाल गणेश आगरकर, आर. जी. भंडारकर, दादाभाई नौरोजी, नौरोजी फिरदौनजी, अन्ना दुरै और स्वामी रामतीर्थ जैसे विभिन्न व्यक्तियों ने धार्मिक और सामाजिक सुधारों में योगदान दिया।

19वीं शताब्दी में हुए प्राय: इन सभी सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों के क्रियाकलापों को ध्यान से देखने पर कुछ बाते समान दिखाई देती हैं। प्रथम, प्राय: सभी सुधारकों ने अपने चिंतन में मानव की तर्कबुद्धि, विवेक और स्वतंत्र विचारों पर बल दिया। अत: तर्कवाद तथा वैज्ञानिक और मानवीय दृष्टिकोण को बढ़ावा मिला। साथ ही पश्चिम के अंधानुकरण को रोका गया और इसके लिए सभी ने शिक्षा के महत्त्व को समझा। सभी संस्थाओं द्वारा अपने-अपने प्रभाव क्षेत्रों में स्कूल और कॉलेज खोले गए। सभी ने नारी शिक्षा पर बल दिया।

दूसरे, सभी सुधारकों ने जाति-प्रथा की जटिलता और छुआछूत पर करारे प्रहार किए। कुछ आंदोलनों का मुख्य मुद्दा ही ये बन गया। इस आधार पर सभी ने समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की भावना पर बल दिया और समाज में एकता की दिशा निर्धारित की।

तीसरे, सभी ने सामाजिक कुरीतियों पर कटु प्रहार किए, विशेषकर विवाह संबंधी सुधारों के लिए आंदोलन हुए। चौथे, सभी ने धार्मिक दृष्टि से रूढ़िवादिता, अंधविश्वासों, पाखंडों और कुप्रथाओं को छोड़ने पर बल दिया।

पांचवें, इन सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलनों ने आगामी राष्ट्रीय आंदोलनों की भूमिका तैयार की। समाज में व्यापक और देशव्यापी दृष्टिकोण जाग्रत किया। इन आंदालनों से आत्मविश्वास, आत्मसम्मान और देशभक्ति की भावना बढ़ी। राष्ट्रीय चेतनाआई। छठे, नकारात्मक दृष्टिसे इस आंदोलन ने परस्पर प्रतियोगिता, स्पर्धा और कटुता को भी बढ़ावा दिया। इससे विभिन्न संप्रदायों में परस्पर तनाव उत्पन्न हुए। इसने सांप्रदायिक, हिंसात्मक दंगों और संगठानों को बढ़ावा दिया, जिसका लाभ उठाकर ब्रिटिश शासकों ने बीसवीं शताब्दी में परस्पर विभेद की नीति को भरपूर आगे बढ़ाया।

परंतु यह सोचना नितांत गलत होगा कि इन आंदोलनों ने भारतीय समाज और चिंतन को पूर्णत: बदल डाला। वस्तुत: ये धार्मिक और सामाजिक आंदोलन पुरातन ओर नवीनता, प्राचीन आस्था और नव बुद्धिवाद, परंपरा और आधुनिकता, अध्यात्मवाद और भौतिकतावाद, राष्ट्रीयता और सांप्रदायिकता के विचरों से ओतप्रोत थे। भारतीय ने न तो पाश्चात्य शिक्षा अथवा उसके दर्शन को पूरी तरह अपनाया और न ही परंपरावादी अतीत को पूरी तरह से नाकारा। सभी आंदोलनों में परंपरा और प्रगति का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। ये सभी आंदोलन प्राय: मध्यमवर्ग और निम्नवर्ग की उपज थे, जौ शनै: देश के सभी वर्गों तक पहुंचने का प्रयास कर रहे थे। इन सभी आंदोलनों ने समाज, शिक्षा और संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण सहायता की। संक्षेप में इन आंदोलनों ने राष्ट्रीयता की जड़ों को सींचा, जिसका पौधा बींसवी शताब्दी में अंकुरित, पुष्पित और पल्लवित हुआ। इन आंदोलनों ने देश की नई पीढ़ी को देश के नेतृत्व के लिए तैयार किया।

- शिक्षा के प्रसार में भी आर्य समाज की प्रमुख भूमिका थी। इसके सदस्यों लाला हंसराज ने DAV कॉलेज की स्थापना की तो दुसरी तरफ स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा गुरकुल कांकड़ी की स्थापना की गई।
- वेलिनटाई चिरौल ने आर्य समाज को भारतीय अशान्ति का जनक कहा है। इसी की पुस्तक इन्डिया है।

थियोसोपिकल सुसाइटी

- 1875 में मैडम ब्लावत्सथी और कर्नल अल्काट द्वारा न्यूयार्क में इसकी स्थापना की गयी।
- 1886 में मद्रास के निकट अडियार में इसका मुख्यालय बनाया गया।
- थियोसिफिकल दर्शन हिन्दु व बौद्ध व जर्धुष्ट (पारसी) को अपना आधार मानता था और भारतीय प्राचीन संस्कृति का समर्थक है।

- 1893 में आयरलैण्ड की फेवियन समाजवादी विचारक एनी वेसेन्ट, भारत आयी और इस संस्था से जुड़कर इसे और लोकप्रियता प्रदान की।
- 1898 में वनारस में सेंटल स्कूल की स्थापना की और इसी की प्रेरणा के आधार पर 1916 में मालवीय ने B.H.U. की स्थापना की।

अलीगढ़ मुस्लिम आन्दोलन

- सर सैयद अहमद मुस्लिम समाज में व्याप्त कुरूतियों व रूढ़वाधिताओं को समाप्त करने के लिए आधुनिक शिक्षा को अति महत्वपूर्ण मानते थे।
- सर सैयद ने 1875-77 में एग्लों मोहम्मडन अर्गेरऐटल स्कूल की स्थापना की जिसे 1920 में AMU नाम दिया गया। इसकी स्थापना में अग्रेजों ने सहायता की। इसके पहले प्रधानाचार्य थियोद वैग वने।
- सैयद अहमद ने दास प्रथा को समाप्त करने की बात की। कुरान पर एक टीका लिखी तथा तहजीव डल अखलात नामक पत्र निकाला।
- 1885 में कांग्रेस की स्थापना के बाद अग्रेजों ने इनका साथ लेकर क्रांग्रेस को कमजोर करना चाहा इसी सन्दर्भ में वनारस के राजा सितारे हिन्द शिव प्रसाद गुप्त व सैयद अहमद के नेतृत्व में इन्डियन प्रेतियोटिक ऐसोशिऐशन की स्थापित किया।

देववन्द स्कूल

- 1866-77 में देववन्द नामक स्थान पर एक स्कूल खोला गया। जिसये इस्लाम में कुरान आधारित शिक्षा को बढ़ावा देना था तथा मुसलिम समाज में बढ़ते पाश्चात्य मूल्यों के प्रसार को रोकना था।
- इसके संस्थापक मौहम्मद कासिम ननोतवी व राशिद गंगोही थे।
- इस संस्था ने कांग्रेस का समर्थन किया और सैयद की संस्था के विरूद्ध फतवा जारी किया।

मुख्य विन्दु :

- 19वी सदी के प्रारम्भिक दशको में भारतीय समाज विभिन्न रूढ़वादिताओं अन्धविश्वासो जटिलताओं से घिरा था जिसमें नारी की स्थित अपने न्यूनतम स्थिर पर आ चुकी थी। और निम्न जातीय छुआ-छूत जैसा अमानवीय व्यवहार किया जा रहा था। वस्तुत: इन दोनों वर्गो की शैक्षिणिक स्थित अति दयनीय थी।
- आधुनिक भारत में सामजिक धार्मिक सुधार आन्दोलन इस लिए भी विशिष्ट हो जाते है क्योंकि ये उपनिवेशक शासन के विरुद्ध उत्पन्न हुए जबकि लगभग शेष विश्व में कोई सुधार अपनी सरकारो के तहत हुआ है।
- यह आन्दोलन सामाजिक धार्मिक सुधार कहलाया क्योंकि भारत में समाज और धर्म इस तरह से जुड़े है कि इन्हे अलग ही नही किया जा सकता। वास्तव में तत्कालीन समाज में जो बुराईयों प्राप्त थी उन्हें धर्म का ही आवरण दिया था। अत: विना धर्म सुधार के समाज सुधार सम्भव नहीं था। इसी लिए प्राय: सभी समाज सुधारकों ने धर्म सुधार के भी प्रयास किये मूर्ति पूजा और देवोभव आदि की तीव्र आलोचना की भारत का S.S.R इस दृष्टि से धर्म निरपेक्ष था क्योंकि उसका वास्तविक लक्ष्य धर्म नहीं समाज सुधार था।
- 19वी सदी तक हिन्दू और मुस्लिम समाज दोनो की रूढ़वादिताये इतनी बढ़ चुकी थी कि चेतना आने पर उनमें सुधार अवश्यमभावी हो चुके थे। इसी समय आधुनिक शिक्षा से युक्त नवोदित मध्यम वर्ग ने महसूस किया कि यदि समाज सुधार के प्रयास न हुए तो हमारी संस्कृति ब्रिटेन संस्कृति में विलीन हो जायेगी।

  ईशाई मिशनरियो द्वारा किया जा रहा धर्म प्रचार भी सुधारको के लिए उत्प्रेरक का कार्य करता है।

  मानववाद : मानव के प्रति

  मानवतावाद : मानवाधर्म

S.S.R के अभिलक्षण :

मानवतावादी :

अब चिन्तन का विषय मनुष्य कल्याण हो गया अर्थात अब कोई भी सुधार मानव की स्थित के अनुसार प्रासंगिक व अप्रासगिक माना जाने लगा।

लौकिकतावाद :

ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने इस सन्दर्भ में कहा कि "ईश्वर के वारे में सोचने के लिए अभी मेरी पास वक्त नहीं है पृथ्वी पर ही वहुत काम किया जाना वाकी है।"

सुधारात्मक :

इसका लक्ष्य भारतीय समाज में आमूल परिवर्तन नहीं करना समाज और धर्म में व्यापत बुराईयो को दूर करना था। अर्थात क्रमिक तरीके से सुधार करना।

तर्कवाद व वुद्धिवाद की प्रधानता :

शिक्षा :

S.S.R का प्रमुख अस्त शिक्षा ही थी क्योंकि सुधारको का आकलन था कि समाज की जड़िता का मूलकारण अज्ञान है विदित है किस भी प्रकार के सुधारको ने शिक्षा प्रसार का

समर्थन किया।

विशेष :

(a) इन सुधारो की आत्मा धर्मनिरपेक्ष थी क्योंकि इसका वास्तविक लक्ष्य समाज सुधार था।

(b) कानून एवं संविधान के माध्यम से भी सामाजिक धार्मिक सुधारो को आगे बढ़ाया गया। जिसमें 1829 सती प्रथा निषेध, 1856 का विधवा पुर्नवा नियम, 1891 में लड़कियो की विवाह हेतु उम्र सीमा निधारित। यहाँ स्पष्ट हो जाना चहिए की अग्रेजो ने मुख्यत: दो विन्दुओ को ध्यान में रखकर ये सुधार किये। उन्हे नवोदित मध्यम वर्ग की प्रशासनिक परिसचालन में आवश्यकता थी और यह पढ़ा लिखा वर्ग समाज सुधार के प्रति जागरूक था।

अपनी श्वेत व्यक्ति के बोझ सिद्धान्त के अनुसार अपनी सत्ता का औचित्य सिद्ध करना था